जनजातीय काव्य में वन जीवन की अभिव्यक्ति

लेखक : डुमनलाल ध्रुव मुजगहन
तारीख : November 12, 2022

किसी भी देश या प्रदेश के जनजातीय कविता को समझने के लिए उस देश की उस प्रदेश की लोक संस्कृति को जानना बहुत जरूरी होता है। हमारी संस्कृति अपनी भाषाओं और उपभाषाओं में बिखरी हुई है। हर राज्य की जनजातीय कविता भाषा और संस्कृति के आधार पर निहित है। यहां की संस्कृति कृषि प्रधान होने के कारण फसल बुवाई से प्रारंभ होकर फसल की कटाई पर अपना संपूर्ण चक्र बना पाती है इस कारण हमारे यहां सभी मुख्य-मुख्य त्यौहार सावन माह से प्रारंभ होकर होली पर अपना एक संपूर्ण चक्र बना पाते हैं।

छत्तीसगढ़ के जनजीवन में वनवासी चरित्र की एक ऐसी उज्जवलता है, जो अन्यत्र नहीं पायी जाती, वे स्वयं धोखा नहीं देते, वे स्वयं कष्ट सह लेते हैं पर दूसरों को कष्ट नहीं देते, वे कठिन परिस्थितियों में भी स्नेह व ममत्व नहीं छोड़ते, जो इस आत्मा से परिचित नहीं होते, वे छत्तीसगढ़ के जनजातीय जीवन की महिमा व्यक्त नहीं करते।

जीवन में मानवीय संवेदनाओं के सुखात्मक एवं दुखात्मक पहलु जरुर आते हैं। मनुष्य जीवन पर भी इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है।
कते जंगल कते झाड़ी कते बन म गा
अगा अगा भइया मोर
कते मेर टेड़ा ला टेरत हाबस गा
कते मेर बासी ला उतारंव रे॥
इही जंगल इही झाड़ी इही बन म ओ

अओ अओ बहिनी मोर इही मेर टेड़ा ला टेरत हावंव ना
इही मेर बासी ला उतारि लेते ना पांच गांठ हरदी ला लेते आबे ना
करसा कलोरी ला लेते आबे ना
पर्रा अउ बिजना ला लेते आबे ना॥
आंखी तोर फूटि जातिस,छाती तोर फाटि जातिस रे
अगा अगा भइया मोर
बहिनी ला काला नइ जानेस रे।
न तो मोर आंखी फूटे न तो मोर छाती फाटे
अओ अओ बहिनी मोर
गोंड़ - गोड़वानी रीति म चलत हाबे ना
ममा अउ फूफू के बन जाथे ना
पुरखा हा हमर चला ले हे ना॥

जनजातीय जनजीवन की बहुत सारी कविताएं और उनकी क्रियाएं हैं। बेहतर है कविता रचते-रचते लोक संगीत का भी पुट मिलादें ताकि पाठक वर्ग को गीत, कविता पढ़ते सुनते समय सुरताल में गुनगुनाने का अवसर मिल सके। अपने समय की लोकानुभूतियों को अभिव्यक्ति दे सके।
महुआ झरे रे महुआ झरे,महुआ झरे रे महुआ झरे
डोंगरी के तीर लगे हे साल छींद
लाली परसा बन म फूले
महुआ झरे......
उगती बूढ़ती ले आवे चार चार मोटियारिन
गावत गावत सबो महुआ बिन डारिन
संझा होवत हे बेरा ढरकथे
कनिहा मटकावत चले रे....
महुआ झरे रे........

आज का समय जिसमें मनुष्य आत्म केंद्रित होता जा रहा है। संयुक्त परिवार की अवधारणा लगभग समाप्त सी हो गई है। ऐसे समय में इन गीतों की उपादेयता काफी हद तक बढ़ गई है।
पानी रे पिये पियत भर ले
दोसदारी झन छूटय जीयत भर ले
मोला मोहि डारे राजा तोर बोली बचन मोला मोहि डारे॥

आदिकाल से जनजातियों में गीतों की शीतलधारा प्रवाहमान है जिसके कारण मानव के मन प्राण को शीतल और सरल बना देते हैं। वनवासी लोकजीवन आनंद और उत्साह भरकर महत्व को रेखांकित करते हैं। मांदर की थाप पड़ते ही लोकनृत्य जन्म लेता है। वनवासी विज्ञापन बाजी से दूर जीवन का एक आवश्यक अंग बनकर फूलता-फलता है। संभावनाओं को आश्रय देता है। तभी तो अधरों पर अनायास गीत फूट पड़ते हैं।
ये भंवा के मारे रे मोर रसिया
तिरछी नजरिया भंवा के मारे।
सिरपुर मंदिर म भरे ला मेला
तोला फोर के खवाहूं राजा नरियर भेला॥

आये ला सावन छाये ला बादर
तोर सुरता के लगायेंव राजा आंखी म काजर ॥
धान के कंसी गेहूं के बाली
मोर मांग में लगा दे राजा पीरित लाली ॥

शायद प्रकृति को देखकर लोकगीतों के प्रति वनवासियों के आवेग स्वतः फूट पड़ते हैं। इन आवेगों की अभिव्यंजना के लिए सामूहिक प्रयास या प्रयोजन की आवश्यकता नहीं पड़ती। दूसरी बात यह है कि संसार की सभी कलाकृतियों की रचना प्रक्रिया पर विचार करने से विदित होता है कि प्रत्येक निर्माण के पीछे एक निर्माता विशेष का ही हाथ रहता है। लोकगीतों, लोक कथाओं, लोक गाथाओं एवं अन्य विधाओं की रचना के संबंध में भी यह बात सत्य प्रतीत होती है। कालांतर में भले ही हमारे जनजातीय समाज उसे अपने संस्कार एवं रूचि के अनुसार संशोधित, परिवर्तित और परिवर्तित कर एक नवीन स्वरूप को अर्थवत्ता प्रदान करता है। जनजातीय गीत - कविता ना नया होता है और ना पुराना। वह तो हमेशा नया जीवन धारण ही करता रहता है।
हाय डारा लोर गे हे रे
बइठिन हे चिरइया डारा लोर गे हे रे ॥
नइ तो दिखे रुखवा राई नइ तो दिखे गांव संगी नई तो दिखे गांव
नई दिखे संग सहेली सहेली काकर संग म जांव
डार लोर गे हे रे

इन गीतों की सर्जना में पुरुषों के साथ-साथ नारियों का भी बहुत बड़ा योगदान है । बल्कि यह कहा जा सकता है कि जनजातीय गीत-कविता अपौरुषेय है । स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले लोकगीत स्त्रियों के ही मानस की उपज है। गीतों के रचयिता जो भी हों पुरुष अथवा स्त्री दोनों ही बड़े उदारचेता होते हैं ।
बाघ नदिया रे टूरा झन जा मंझनिया रे बाघ नदिया
एके अताल खोर एके पताल खोर
धमधा के औरे ओर खैरागढ़ के कोरे कोर
बाघ नदिया ....
एक बोझा राहेर काड़ी एक बोझा कांसी
पिंजरा ले मैना बोले मन हे उदासी ओ
तालबुलबुल तालबुलबुल टूरी रांधे रबे केरा साग
तालबुलबुल ....

गीत जनजातीय जनजीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है , जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रहकर कम या अधिक रूप में भी आदिम अवस्था में निवास करते हैं । युग - युग की पीड़ा को हम अपने स्वरों में स्थान देते हैं।
हाय रे हाय रे डुमर खोला खोला
छतिया ला बान मारे तरसत हे चोला ।
आमा के पत्ता चुरुस भइगे का या चुरुस भइगे
कोन बैरी के सिखोना मयारु हाय रे मुरुख भइगे
ये या मोर हिरदे के मैना-मैना
छतिया ला बान मारे.....
साजा के पेंड़ मा खड़े हे राजा का या खड़े हे राजा ना

तोला मेमरी पिया के मयारु हाय रे करेंव ताजा
ये या मोर हिरदे के मैना- मैना
छतिया ला बान मारे.....
ओ गुलर वृक्षों के गांव में रहने वाले मेरे साथी! तुम्हारी याद मेरे सीने में बाण चला रही है और मेरा मन तड़प रहा है। आम के पत्ते सूख गए हैं। तुम किस दुश्मन की बातों में बहक गए जो मुझे भूल गए। राजा के वृक्ष पर राजा खड़ा हुआ है। मैं तुम्हें मेमोरी (एक वन औषधि) पिलाकर सचेत किया है। ओ मेरे हृदय की मैना! तुम मुझे क्यों भूल गई।

कोइली के गुरतुर बोली मैना के मीठी बोली
जीवरा ला बान मारे रे ....
गिरे ला पानी चूहे ला ओइरछा,
तोर मया मा मयारु मारथे मूरछा।
जीवरा ला बान मारे रे.......
कोयल और मैना की मीठी आवाज हृदय में बाणों की तरह चुभ रही है । पानी बरसने पर छप्पर से पानी टपक रहा है।ओ मेरे प्रिय! तुम्हारे प्रेम के कारण मुझे मूर्छा आ रही है।

सदियों से प्रचलित जनजातीय लोकगीत, कविता वाचिक परंपरा का ऐसा प्रवाह है जिसमें उसके अंतर्मन की व्यथा कथा छलकती है। जनजातीय गीत किसी संस्कृति के मुंह बोलते चित्र की तरह हैं। लोक का भावुक और निर्लिप्त मन जन्म से मृत्यु तक लोकगीतों का संबल ढूंढता है। सच तो यह है कि वह गीत जो कानों को मीठा लगे, हृदय को गुदगुदाए, कण-कण में रचकर मुस्कुराए विशेष अंचल में वहां की बोली में जब गाया जाए और जन- जन के कंठ का हार बने तो वह लोकगीत कहलाता है। लोकगीत खदान से निकले हुए हीरे की तरह होते हैं।

आलेख

डुमनलाल ध्रुव
प्रचार-प्रसार अधिकारी
जिला पंचायत धमतरी
मो. 9424210208